सावधानी और श्रद्धा

प्रफुल्ल कोलख्यान

किसी भी काम को योजना के अनुसार करने का अपना मजा है। सभी चाहते हैं कि सब काम समय पर और तय ढंग से संपन्न हो। यह बात यात्रा पर भी लागू होती है। यात्रा के दौरान मिलनेवाले ऐसे ही मजा के कारण पर्यटन एक उद्योग के रूप में विकसित हुआ है। बंगाल के मध्यवित्त लोगों में पर्यटन पर निकलने का भारी चलन है। आम तौर पर इन्हें भोजन, भ्रमण और साहित्य से बहुत लगाव है। जब मैं यहाँ आया तो नये-नये परिचित हुए लोग बताते कि वे घूमने के लिए फलाँ जगह जा रहे हैं या फिर फलाँ जगह से घूमकर आ रहे हैं। मैं उन्हें अचरज की निगाह से देखा करता था। बिना किसी काम के इतना पैसा खर्च कर लोग सिर्फ घूमने जाते हैं! मेरी चकित चुपी को ताड़ते हुए वे जब मुझ से पूछते कि तुम इस साल घूमने कहाँ जाओगे, तो मैं बुरी तरह झेंप जाया करता था। अपनी झेंप मिटाने के लिए कह दिया करता था कि भाई मैं घूमते-घूमते तो यहाँ तक पहुँचा हूँ; जन्म मिथिला में, शिक्षा झारखंड में और रोटी बंगाल में! अब यहाँ से कहाँ जाऊँ? राहुल सांकृत्यायन ने भले ही अथातो घुमक्कड़ शास्त्र लिखकर और अपने जीवन में उसे बरतकर घुमक्कड़ी का महत्त्व बताया हो, नागार्जुन ने भले ही घुमक्कड़ी के रचनात्मक उपयोग का पराक्रम दिखलाया हो लेकिन हम जैसे लोगों की सारी ऊर्जा तो 'चौरासी लाख योनियों' के अवागमन-चक्र और घूमते रहने से छुटकारा पाने में ही लग जाती है। हिंदी समाज के लोगों, खासकर पुरबियों में, तीर्थाटन का तो कुछ चलन है भी लेकिन पर्यटन पर जाना इनके मिजाज में ही नहीं है।

आम आदमी की जिंदगी का अधिकांश स्थितियों के दबाव से तय होता है। आजीविका की खोज में भटकते-भटकते घर-परिवार से दूर देश के कोने-कोने

में पसरे, 'परदेश कलेस नरेसहुँ के' जैसी उक्ति को मंत्र की तरह जपते हुए सारी असुविधाओं को सहने की ताकत बटोरते हुए हिंदी समाज के लोगों की चेतना और ऊर्जा का सिंह-भाग तो लौटकर घर-परिवार के बीच पहुँचने में ही खप जाया करती है। थोड़ी 'पूँजी' हुई नहीं, कोई 'खबर' आई नहीं, छोटे-मोटे 'कर्ज मिलने' की संभावना जगी नहीं कि चल पड़ते हैं, अपने टूटे हुए सपनों के बचे प्रांतर में नीड़ का निर्माण करने के लिए। टूटे हुए सपनों के बचे प्रांतर की गंध तो पहले चिट्ठी में लिपटकर आया करती थी। चिट्ठी में ढेर सारी बातें होती थीं। बातें नाते-रिश्ते में हुई मौत की, आस-पड़ोस में हुए जन्म की, बाबा की बीमारी की, बहुरिया के पाँव भारी होने की, और भी बहुत कुछ कथ्य और अकथ्य। अंत में लिखा होता है, थोड़ा लिखा, बहुत समझना, चिट्ठी नहीं तार समझना; खाना वहाँ, हाथ सुखाना यहाँ। काँपते हाथों से लिखी गई थरथराती इबारत के पूरा होते-न-होते कल्पनालोक का द्वार खुल जाता। आस-पास धीरे-धीरे तरल स्वप्न पसरने लगता। अंत में किसी तरह शंकाओं और संभावनाओं के बीच भारी द्वंद्व को झेलते हुए यात्रा के प्रारंभ का समाँ बँधता है। अपने घर-संसार से दूर परदेश में रहते हुए गरीब लोगों की जिंदगी में यात्रा का अवसर अक्सर अचानक ही उपस्थित होता है। औचक में योजना के लिए कहाँ जगह!

हावड़ा से छूटनेवाली किसी भी रेलगाड़ी में भीड़ किसी मौसम का मोहताज नहीं होती है। किसी भी गाड़ी में भीड़ का दबाव बहुत मारक होता है। एक तो जिंदगी के दबाव से सिकुड़ा हुआ मन और वीरेन डंगवाल के शब्दों में कहें तो, 'डिब्बे भी पाँच ऐसी के, पाँच में ठुँसा हुआ सारा वतन'। जैसे युद्ध के मैदान में बमवर्षण की भनक पाते ही सैनिक जमीन पकड़ लेते हैं, वैसे ही लोग बिना समय गँवाये फर्श पर बैठ जाते हैं। साधारण-सा नियम यह है कि बैठने में जितनी देर होती जायेगी, बैठने की जगह मिलने की संभावनाएँ भी उतनी ही धूमिल होती जायेगी। होली के ठीक चार-पाँच दिन पहले मेरे ससुर के निधन

का समाचार आया। पत्नी पहले से वहीं थीं। बच्चे मेरे साथ कोलकाता में थे। तुरत जाने की तैयारी करनी थी। किसी तरह से हम गाड़ी में घुस तो गये लेकिन बैठने की जगह नहीं मिल पाई। यह तो संयोग अच्छा था कि नीचे फर्श पर बैठने की जगह पा लेने में हम कामयाब हो गये थे। पास ही एक और सज्जन बैठे थे। भीड़ के दबाव से कुछ अधिक ही तिलमिलाये हुए थे। पास बैठे वृद्ध से उन्हें खासी परेशानी हो रही थी। मुखारविंद से उनकी कुढ़न बार-बार बाहर आ रही थी। थे। उनकी जेब में खुँसी एक जोड़ी कलम देखकर मुझे उन से कुछ कहने की हिम्मत हुई। मेरे यह कहने पर कि आप पढ़े-लिखे आदमी मालूम पड़ते हैं, वे चिढ़कर बोले मालूम क्या पड़ता हूँ, पढ़ा-लिखा हूँ। मैंने कहा इस बूढ़े पर आपका बार-बार चढ़ बैठने की कोशिश करना आपको शोभता नहीं है। प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' में एक पंक्ति का आशय है कि दुख साथ मिलकर बाँटने से ही दूर होता है। उन्होंने छूटते ही कहा वो सब 'किताबी' बातें हैं। मेरे यह कहने पर कि पढ़ाई-लिखाई तो 'किताबी क्रिया' है और जिस पढ़े-लिखे आदमी को किताबी बातों पर यकीन नहीं है उस पढ़े-लिखे आदमी के पढ़े-लिखे होने पर आम आदमी को क्यों यकीन हो? क्यों आपके पढ़े-लिखे आदमी होने पर दूसरे आपका आदर करें! आस-पास बैठे लोगों की रूचि भी बहस में जुड़ने लगी। अच्छी बात यह थी कि बहस में चुटकी तो बहुत थी, लेकिन कटुता नहीं थी। हरिशंकर परसाई या हरिमोहन झा उस घटना के साक्षी बने होते तो हिंदी के व्यंग्य-वैभव में जरूर कुछ और भी जुड़ता। लगभग बारह घंटे का सफर। मजबूरी यह कि कोई हिल भी नहीं सकता। जो हो, अंत में इस बात पर सहमति तो बन ही गई कि 'किताबी' बातों पर श्रद्धा रखना और जीवन में उसे सावधानी से बरतना ही पढ़ने-लिखने की सार्थकता भी है और जीवन को मनोरम बनाने में हमारे योगदान का तरीका भी है।

देश-दुनिया में बहाई जा रही नई हवा के कारण आजकल टूटे हुए सपनों के बचे प्रांतर का आयतन वैसे ही छोटा होता जा रहा है। जीवन में

योजनाबद्धता की जितनी जरूरत बढ़ती जा रही है, उतना ही सब कुछ औचक भी होता जा रहा है। इस औचकपने के कारण न किसी सावधानी के लिए जगह बच पा रही है न किसी श्रद्धा के लिए। ऐसे में, जीवन मनोरम कैसे बने !